

## हिंदी-उर्दू विवाद और मुसलमान लेखकों पर उसका प्रभाव

हृदय कुमार

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, श्री अरविंद कॉलेज (सांध्य)  
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

**सारांश-**जब हम हिंदी साहित्य के विकास क्रम को देखते हैं तो पाते हैं कि स्वतंत्रता प्राप्ति तक कोई मुसलमान लेखक हिंदी में नहीं दिखता जबकि रीतिकाल तक उनकी उपस्थिति ठीक-ठाक है। इंशा अल्ला खाँ तथा उनकी रचना 'रानी केतकी की कहानी' अपवादस्वरूप मिलती है। मुसलमान लेखकों की अनुपस्थिति का कारण संभवतः हिंदी-उर्दू का विवाद रहा है, जिसकी ओर आचार्य शुक्ल का इशारा था। रामविलास शर्मा लिखते हैं कि "सन् सत्तावन के बाद अंग्रेजों ने हिंदी-उर्दू समस्या को जिस तरह उभारा वही उनकी फूट डालो और राज करो की नीति का अभिन्न अंग थी"। हिंदी-उर्दू विवाद का स्रोत देवनागरी लिपि और फारसी लिपि के प्रयोग से संबंधित था।

**बीज शब्द-**हिंदी साहित्य, देवनागरी लिपि, फारसी लिपि, हिंदी-उर्दू विवाद, हिंदू-मुस्लिम वैमनस्य

**भूमिका-**आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अपने इतिहास ग्रंथ में सूफी कवि नूर मोहम्मद के हिंदी भाषा में रचना करने पर तथा इस कारण इन्हें सफाई देने का उल्लेख किया है। इस पर आ. शुक्ल की टिप्पणी है कि संवत् 1800 तक आते-आते हिंदी से किनारा करने लगे। जब हम हिंदी साहित्य के विकास क्रम को देखते हैं तो पाते हैं कि स्वतंत्रता प्राप्ति तक कोई मुसलमान लेखक हिंदी में नहीं दिखता जबकि रीतिकाल तक उनकी उपस्थिति ठीक-ठाक है। इंशा अल्ला खाँ तथा उनकी रचना 'रानी केतकी की कहानी' अपवादस्वरूप मिलती है। मुसलमान लेखकों की अनुपस्थिति का कारण संभवतः हिंदी-उर्दू का विवाद रहा है, जिसकी ओर आचार्य शुक्ल का इशारा था।

कृपाशंकर सिंह की एक महत्वपूर्ण पुस्तक- 'हिंदी-उर्दू-हिंदुस्तानी: हिंदू-मुस्लिम सांप्रदायिकता और अंग्रेजी राज' (1800-1947), इस संदर्भ में उल्लेखनीय पुस्तक है। इसमें लेखक ने अंग्रेजी शासन की नीति के फलस्वरूप हिंदी-उर्दू विवाद को हिंदू-मुस्लिम वैमनस्य में परिवर्तित की जाने की प्रक्रिया का वर्णन किया है। संभवतः हिंदी भाषा का संबंध हिंदू

धर्म से जुड़ जाने के कारण कोई मुसलमान लेखक हिंदी में रचना करने में संलग्न नहीं हुआ।

"हिंदी-उर्दू दो अलग-अलग ज़ुबानें हैं, इस पर जितना जोर अंग्रेजों ने दिया, उतना मुसलिम लेखकों ने भी नहीं दिया। ...मुस्लिम राजनीतिज्ञों और बुद्धिजीवियों को उर्दू को अलग और स्वतंत्र मानने के फायदे अंग्रेजों द्वारा सुझाए गए थे। अन्यथा क्या कारण है कि मुस्लिम शासनकाल में तो हिंदी को उर्दू से अलग नहीं समझा गया। गालिब और मीर जैसे उर्दू के महान शायरों ने भी इनमें कोई फर्क नहीं किया, दोनों शब्दों को समानार्थी मानकर ये कवि चले, पर ब्रिटिश शासन के कायम होते ही एक ही ज़बान को व्यक्त करने वाले ये शब्द रातों-रात दो अलग ज़बानों के प्रतीक बन गए"।<sup>1</sup>

रामविलास शर्मा भी इस बात को 'भाषा और समाज' पुस्तक में इस प्रकार बताते हैं— "अंग्रेजीराज कायम होने के समय उत्तर भारत में हिंदुओं और मुसलमानों की एक सामान्य भाषा थी जो कठिन उर्दू से भिन्न थी और जो शहर के लोगों की सांस्कृतिक एकता की प्रतीक थी। धर्म के आधार पर दो कोमों और भाषाओं का अभी सवाल ना था"।<sup>2</sup> फूट डालो और शासन करो की नीति के अनुरूप अंग्रेज इस बात पर जोर देते थे कि हिंदी और उर्दू दो अलग भाषाएं हैं तथा हिंदू और मुसलमान दो भिन्न राष्ट्र (नेशन) हैं क्योंकि ये दोनों सांस्कृतिक दृष्टि से भिन्न हैं।

रामविलास शर्मा लिखते हैं कि "जो एक सांस्कृतिक भेदभाव की बात थी उसे गिलक्राइस्ट ने बढ़ा-चढ़ाकर धार्मिक भेदभाव की बात बना दिया। अवध, ब्रज, बुंदेलखंड और भोजपुर आदि जनपदों के गांवों में हिंदू और मुसलमान अपने-अपने यहां की भाषाएं बोलते हैं, धर्म के कारण उनमें कहीं भी अलगाव नहीं है, इस बात को इन्होंने (गिलक्राइस्ट) ने बिलकुल भूला दिया।"<sup>3</sup> "वैसे हिंदी-उर्दू का पूरा छंद पढ़े-लिखे और बौद्धिक हिंदू का छंद था। दूर—राज के बाशिंदे से

चाहे वे मुसलमान रहे हों या हिंदू, इस झगड़े से कोई वास्ता ना था। वहां ये दोनों कौमे एक ही मिली-जुली ज़बान बोलती थी, जो वहां की स्थानीय बोली थी। यह इसलिए भी था कि देहातों के बहुसंख्यक मुस्लिम समुदाय पहले तो हिंदू ही था।”<sup>4</sup>

1857 के सिपाही विद्रोह में हिंदू-मुस्लिम एकता ने अंग्रेजी शासन को अपनी नीति पर पुनः विचार करने के लिए प्रेरित किया। रामविलास शर्मा लिखते हैं कि “सन् सत्तावन के बाद अंग्रेजों ने हिंदी-उर्दू समस्या को जिस तरह उभारा वही उनकी फूट डालो और राज करो की नीति का अभिन्न अंग थी।”<sup>5</sup> हिंदी-उर्दू विवाद का स्रोत देवनागरी लिपि और फारसी लिपि के प्रयोग से संबंधित था। “निचली कचहरियों और निचले स्तर के सरकारी कामकाज में कौनसी लिपि अपनाई जाए, इसी सवाल से हिंदी-उर्दू की लड़ाई शुरू होती है। इसके पहले हिंदी-उर्दू को लेकर हिंदू-मुस्लिम झगड़े अस्तित्व में नहीं थे। पढ़े-लिखों को सरकारी नौकरियों का लालच दिखाकर अंग्रेजों ने हिंदू-मुस्लिम वैमनस्य में एक नया अध्याय जोड़ा था।”<sup>6</sup> इस प्रकार न केवल हिंदी और उर्दू के बीच विवाद उत्पन्न हुआ अपितु हिंदू और मुस्लिम दोनों संप्रदाय स्वयं को सरकारी नौकरियों में एक दूसरे के प्रतिद्वंद्वी के रूप में देखने लगे।

“अब तक निचले स्तर के अधिकांश कर्मचारी मुस्लिम ही थे। शुरू से ही चले आ रहे थे। फारसी में और बाद में फारसी लिपि में लिखी उर्दू में ही सरकारी कामकाज होता था, जिसमें अधिकतर मुसलमान खपे हुए थे। उनका स्थान पर्याप्त संख्या में हिंदू कर्मचारी तभी ले सकते थे, जब भाषा नीति में परिवर्तन लाया जाता। अंग्रेज इसी विचार से भाषा नीति में कुछ फेर बदल के बारे में सोच रहे थे। सत्तावन की क्रांति ने उस सोच को और तेज कर दिया।”<sup>7</sup> इस प्रकार भारतीय समाज के साहित्यिक क्षेत्र में हिंदी-उर्दू के विवाद ने चिंगारी के रूप में हिंदू-मुस्लिम वैमनस्य की आग का रूप धारण कर लिया जिस आग में घी डालकर उसे और प्रज्वलित करने का काम अंग्रेजों की भाषा नीति ने किया।

कृपाशंकर सिंह अपनी पुस्तक ‘हिंदी-उर्दू-हिंदुस्तानी’ में हिंदी-उर्दू विवाद का प्रभाव उसके समर्थकों पर किस रूप में पड़ा इसकी अभिव्यक्ति इस प्रकार की है- “1867 में बनारस के कुछ गणमान्य हिंदूओं ने उर्दू के स्थान पर नागरी लिपि को अपनाए

जाने की मांग की। 1869 में ही सर सैयद अहमद खाँ ने मुसलमानों की एक सभा में यह घोषणा की कि अपनी भाषा (उर्दू) की रक्षा के लिए मुसलमानों को संगठित हो जाना चाहिए।”<sup>8</sup> दोनों ही समुदायों के नेताओं ने अपनी-अपनी कौम को भिन्न भाषा से जोड़ते हुए उसे सांप्रदायिक रंग दे दिया। इस प्रकार उपयुक्त विचारों ने हिंदी-उर्दू विवाद को हिंदू-मुस्लिम वैमनस्य के रूप में बढ़ावा दिया। परिणामतः “उर्दू के समर्थकों (मुसलमानों) को हिंदी प्रतिद्वंद्वी के रूप में दिखाई दी। कुछ लेखकों को यह अपनी संस्कृति पर ही हमला दिखाई दिया। अंग्रेजों ने अपनी भाषा नीति से बहस को और बढ़ावा दिया और उसमें दोनों तरफ से ऐसी बातें कही जो उचित न थी।”<sup>9</sup> आगे क्या हुआ हम सब जानते हैं। हिंदी-उर्दू विवाद, हिंदू-मुस्लिम रिश्ते के बीच टकराव का एक स्थाई कारण बना रहा जब तक की भारत-विभाजन संपन्न ना हो गया।

प्रेमचंद पूर्व के उपन्यासों में मुस्लिम परिवेश

भारत एक सेक्यूलर प्रजातांत्रिक गणराज्य है। मुसलमान भारत की सबसे अधिक अल्पसंख्यक हैं। भारतीय जीवन में मुसलमानों के अस्तित्व को झुठलाया नहीं जा सकता। किंतु खेद की बात है कि प्राचीन मध्यकालीन हिंदी साहित्य में मुस्लिम जीवन का चित्रण ना के बराबर हुआ है। मध्यकालीन मुस्लिम रचनाकारों ने भी मुस्लिम समाज के सांस्कृतिक परिवेश का महत्वपूर्ण चित्रण नहीं किया है।

आधुनिक युग में भी हिंदी साहित्य में जीवन की यथार्थता का विशेष चित्रण हो पाया है। आधुनिक हिंदी साहित्य, विशेषतः कथासाहित्य में जीवन का व्यापक चित्रण हुआ है। भारतेंदु काल के पूर्व हिंदी कथा साहित्य में कोई निश्चित परंपरा नहीं रही। उस समय की रचना ‘रानी केतकी की कहानी’, ‘राजा भोज का सपना’ आदि पुराने ढंग की कथाएँ थीं। संस्कृत से अनुदित पौराणिक और धार्मिक कथाओं तथा उर्दू-फारसी के परंपरागत किस्सों- ‘किस्सा चार दरवेश’, ‘किस्सा हातिमताई’, ‘किस्सा साढ़े-सात यार’ तक ही उस समय का कथा-साहित्य सीमित था। हिंदी उपन्यास से पहले उर्दू में उपन्यास विधा का विकास हुआ। उर्दू उपन्यास डिप्टी नजीर अहमद हैं जिनका पहला

उपन्यास 'मिरातुल अरुस' 1869 में प्रकाशित हुआ। यह उपन्यास एक सुधारवादी सामाजिक उपन्यास है जिसकी मुख्य प्रवृत्ति आदर्शवाद की नींव पर टिकी है। हिंदी के प्रारंभिक उपन्यासों की भी यही प्रवृत्ति है। ईश्वरी प्रसाद और कल्याण राय लिखित 'वामा शिक्षक' (1872), श्रद्धाराम फिल्लौरी कृत 'भाग्यवती' (1877), राधाकृष्ण दास लिखित 'निस्सहाय हिंदू' (1881), लाला श्रीनिवास दास कृत 'परीक्षा गुरु' (1882), आदि इस प्रवृत्ति की उल्लेखनीय कृतियां हैं। हालांकि आ. शुक्ल ने 'परीक्षा गुरु' को हिंदी का पहला उपन्यास माना है, लेकिन उपरोक्त रचनाएं भी भारतेंदु युग में महत्व रखती हैं।

गोपालराय के अनुसार, " 'निस्सहाय हिंदू' हिंदी का पहला उपन्यास है जिसमें मुस्लिम समाज का चित्रण हुआ है। पहली बार मुस्लिम पात्रों का समावेश 'निस्सहाय हिंदू' में देखने को मिलता है"।<sup>10</sup> इस उपन्यास का केंद्रीय विषय 'गौवध निवारण' है। भारतेंदु युगीन महत्वपूर्ण उपन्यासों में 'चंद्रकांता' और 'चंद्रकांता संतति' का भाषा के विकास में महत्वपूर्ण योगदान है जिसका उल्लेख आ. शुक्ल ने अपने इतिहास में किया है। इन उपन्यासों में मुसलमानों के प्रति लेखक की धारणा पर गोपालराय की टिप्पणी है- "देवकीनंदन खत्री के उपन्यासों में मुसलमान पात्रों को दुष्ट, दगाबाज, चरित्रहीन आदि रूपों में ही चित्रित किया गया है। बांग्ला में अनुदित उपन्यासों में तो सामान्य रूप से मुस्लिम पात्रों का यही रूप देखने को मिलता है। यह उस काल के सामान्य हिंदू मनोवृत्ति थी।"<sup>11</sup>

प्रेमचंदयुगीन कथासाहित्य और मुस्लिम परिवेश-हिंदी कथासाहित्य में प्रेमचंद का आगमन एक महत्वपूर्ण घटना है। उनसे पूर्व हिंदी कथासाहित्य के पाठक या तो सनातनधर्मी प्रतिक्रियावादी मनोवृत्ति के ऐतिहासिक रोमांसों में उलझे हुए थे या तिलिस्मी और जासूसी के आश्चर्यजनक करिश्मे देखते रहे थे। प्रेमचंद पहले लेखक हैं, जिन्होंने हिंदी कथा साहित्य को वास्तविकता की जमीन पर लाकर खड़ा कर दिया। उनका लक्ष्य केवल पाठकों का मनोरंजन करना ही नहीं अपितु उन्हें समसामयिक समस्याओं से अवगत कराना भी था। प्रेमचंद के कथा साहित्य में मुस्लिम परिवेश के संबंध में गोपालराय लिखते हैं, "उन्होंने हिंदी उपन्यास को उस संकीर्ण

विचारधारा से मुक्त कराने का प्रयास किया जिसके तहत मुसलमान पात्रों को काले और हिंदू पात्रों को सफेद रंग से चित्रित किया जाता था। उन्होंने अपने को देवकीनंदन खत्री, किशोरीलाल गोस्वामी, गंगाप्रसाद आदि उपन्यासकारों से ना जोड़कर भारतेंदुयुगीन लेखकों, विशेषकर राधाकृष्ण दास से जोड़ा। जिन्होंने पहली बार 'निस्सहाय हिंदू' में साम्प्रदायिक सौहार्द का अद्भुत उदाहरण प्रस्तुत किया था।"<sup>12</sup>

प्रेमचंद के उपन्यासों में ऐसे पात्र मिलते हैं जो हिंदू और मुसलमान होने से पहले मनुष्य होत हैं और संघर्ष रोकने के लिए अपनी जान की बाजी लगा देते हैं। 'कायाकल्प' उपन्यास का 'चक्रधर' ऐसा ही पात्र है। इसका दूसरा पात्र ख्वाजा महमूद अपने हिंदू मित्र की बेटी के लिए अपने बेटे तक को माफ नहीं करता। गोपालराय के अनुसार, "मुसलमान पात्रों को प्रेमचंद ने जिस तरह तटस्थ सहानुभूति प्रदान की है, वह उनकी मानवीय रचना दृष्टि का परिचायक है।"<sup>13</sup>

**निष्कर्ष**-खेद की बात है कि इस्लामी धर्म और संस्कृति के इतिहास के अध्ययन की परंपरा प्रेमचंद ने चलाई थी, उस पर हिंदी के आगामी कथाकार विशेष अग्रसर नहीं हुए। स्वाधीनता से पूर्व के हिंदी उपन्यासों में कोई उल्लेखनीय कृति नहीं है जिसमें मुस्लिम जीवन और संस्कृति का अंकन विश्वसनीय ढंग से हुआ हो, लेकिन कुछ कहानियाँ इस दृष्टि से उल्लेखनीय बन पड़ी हैं। प्रेमचंदोत्तर कथा साहित्य में तथा गैर-मुस्लिम कथाकारों के कथा साहित्य में मुस्लिम जीवन और संस्कृति के चित्रण का कोई विशेष प्रयास नहीं पाया जाता। ऐसा प्रतीत होता है कि स्वातंत्र्योत्तर कथाकारों का मुस्लिम परिवेश से कोई संपर्क नहीं रह गया था। पुराने कथाकारों का फिर भी उर्दू भाषा और जीवन से निकट का संबंध था। 'नई कहानी' के दौर के कथाकार इस संबंध सूत्र से कटे हुए से हैं, जिसकी क्षतिपूर्ति शानी, राही मासूम रजा आदि जैसे कथाकारों ने की।

\*\*\*\*\*

**संदर्भ:**

- कृपाशंकर सिंह, हिंदी-उर्दू-हिंदुस्तानी, पृ. 21
- रामविलास शर्मा, भाषा और समाज, पृ. 316
- रामविलास शर्मा, भारत की भाषा-समस्या, पृ. 317
- कृपाशंकर सिंह, हिंदी-उर्दू-हिंदुस्तानी, पृ. 11
- रामविलास शर्मा, भारत की भाषा-समस्या, पृ. 319
- कृपाशंकर सिंह, हिंदी-उर्दू-हिंदुस्तानी, पृ. 12
- कृपाशंकर सिंह, हिंदी-उर्दू-हिंदुस्तानी, पृ. 29
- रामविलास शर्मा, भारत की भाषा-समस्या, पृ. 304
- कृपाशंकर सिंह, हिंदी-उर्दू-हिंदुस्तानी, पृ. 11
- गोपालराय, हिंदी उपन्यास का इतिहास, पृ. 80
- गोपालराय, हिंदी उपन्यास का इतिहास, पृ. 45
- गोपालराय, हिंदी उपन्यास का इतिहास, पृ. 138
- गोपालराय, हिंदी उपन्यास का इतिहास, पृ. 129